ICSSR Sponsored
ISSN: 2319-9997
Journal of Nehru Gram Bharati University, 2025; Vol. 14 (I):348-353

गुप्तकालीन चिकित्सा विज्ञान

बीरभान सिंह एवं अभिजात ओझा
प्राचीन इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग,
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज, उत्तर प्रदेश
Email: beerbhan0123@gmail.com

Received: 03.12.2024 Revised:08.03.2025 Accepted: 20.03.2025

संक्षिप्त नोट

गुप्तकाल में चिकित्सा – विज्ञान के क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन हुआ। जहाँ आयुर्वेद के अन्तर्गत कायिक चिकित्सा के क्षेत्र में आयुर्वेदाचार्य चरक के द्वारा कुषाणकाल में ***'चरक संहिता'*** *की रचना की जा चुकी थी और इस दिशा में नये मापदण्डों को स्थापित किया जा चुका था वहीं गुप्तयुग में शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ।*

सुश्रुत संहिता : शल्य चिकित्सा (सर्जरी) के विकास का श्रेय सुश्रुत को दिया जाता है। इतिहासकार सुश्रुत का समय ईसा की चतुर्थ शताब्दी मानते हैं। परन्तु भारतीय परम्परा के अनुसार मूल सुश्रुत संहिता के लेखक को इससे कई शताब्दी पूर्व का होना चाहिए। कुछ विद्वान मानते हैं कि सुश्रुत का जन्म ई०पू०छठी शताब्दी में हुआ था और वे अग्निवेश के समसामयिक थे। महाभारत में सुश्रुत को विश्वामित्र का पुत्र बताया गया है। जो भी हो इतना तो निश्चित प्राय है कि सुश्रुत संहिता को गुप्तकाल में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गुप्तोत्तर काल में भारत ही नही भारत के बाहर भी इसका अनेक विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुआ।

दुर्भाग्यवश सुश्रुत संहिता भी चरक संहिता की भाँति अपने मूल रूप में उपलब्ध नही है। परम्परानुसार बौद्ध विद्वान नागार्जुन ने इसमें अपने अनुभव के आधार पर चिकित्सा सम्बन्धी सामग्री का प्रक्षेप किया था। कालान्तर में चन्द्रट नामक चिकित्सा शास्त्र के विद्वान ने भी इसमे संशोधन किया। चरक संहिता की तुलना में सुश्रुत संहिता आकार में छोटी है। यह संहिता लौकिक संस्कृत में रचित है तथा गद्य-पद्य मिश्रित है। यह ग्रन्थ पाँच स्थानों के 120 अध्यायों में विभक्त है। इसके पाँच स्थानों में सूत्र स्थान, शरीर स्थान, निदान स्थान, चिकित्सा स्थान एवं कल्प स्थान का समावेश है । इस ग्रन्थ में मुख्यतः शल्य चिकित्सा, शल्य चिकित्सा में उपयोगी उपकरणों का निर्माण तथा उपयोग, प्राणियों के शरीर रचना विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, शरीर के चीड़फाड़ विषयक तकनीकों एवं विष विज्ञान आदि की विवेचन है।

सुश्रुत की शल्य चिकित्सा पूर्णतया वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। उसने चिकित्सा के **आठ अंग** निर्धारित किया था।

1. **आहार्य -** शरीर में से कोई ठोस अथवा भारी वस्तु बाहर निकालना।
2. **मेघ -** भेदन करना, शरीर का कोई अंग काटना।
3. **छेद्य -** छेद करना।
4. **एष्य -** अन्तर्भागों की खोज करना।
5. **लेख्य -** खुरचना, कुरेदना।
6. **सीव्य -** सिलाई करना, टाँकेलगाना।
7. **वेध्य -** छोटे मुँह वाले उपकरणों से बेधना, शिरा आदि में छेद करना।
8. **विस्राव्य -** सुन्न करना, द्रव आदि निकालना।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सुश्रुत ने शल्य चिकित्सा के जिन आठ अंगों का निर्धारण किया था उसी के आधार पर आधुनिक शल्य चिकित्सा के स्वरूप का विकास हुआ। उनका कथन है कि जिसने उचित क्रियाओं को उचित विधि से नही सीखा और जो शस्त्र, क्षाराग्नि एवं औषधियों का अनुचित प्रयोग करता है उससे उसी प्रकार बचे रहना चाहिए जिस प्रकार विषैले सर्प से बचते हैं। स्पष्ट है कि चरक की भाँति सुश्रुत ने भी शल्य क्रिया के निमित्त उचित प्रशिक्षण पर बल दिया है। कदाचित उनकी दृष्टि आधुनिक **'झोलाछाप चिकित्सकों'** की ओर थी जो चिकित्सा शास्त्र से सम्बन्धित प्राथमिक सैद्धान्तिक तथ्यों को भी नही जानते हुए भी बड़े - बड़े आपरेशन करने को उद्यत रहते हैं। सुश्रुत संहिता के 'विशिखानु प्रवेशनीय अध्याय' में बताया गया है कि चिकित्सा-शास्त्र के विद्यार्थी को गुरुमुख से शास्त्र पढ़कर गुरू के समीप होकर, नख एवं बाल कटवाकर स्नानादिक के द्वारा पवित्र होकर, श्वेत वस्त्रादिधारण कर, दण्ड धारण कर, उपानह (जूता) पहनकर, सभ्य वेश में, मन, वाणी, और कर्म से पवित्र होकर, प्राणियों का बंधु बनकर वैद्यक कार्य में पवित्र होना चाहिए।[2]

इसी प्रकार 'शिष्योपनीय अध्याय' में चिकित्सा कार्य में अभिरूचि रखनें वाले शिष्यों के उपनयन का उल्लेख करते हुए सुश्रुत ने लिखा है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य जाति के शुद्ध वंश में अथवा आयुर्वेद का अध्ययन करने वाले के कुल में उत्पन्न बालक अथवा तरूण अवस्था वाले, शील, शूरता पवित्रता कुल तथा देश के व्यवहार को जानने वाले, नम्रता, उत्साह,शक्तिबल, मेधास्मृति, स्थिरमति, उत्तम सूझ-बूझ युक्त, पतली जिहवा, पतले ओंठ, पतले दाँतों के अग्रभाग वाले, सरलंमुख, नासिका, आँखों वाले, प्रसन्नचित्त, मधुरवाणी, सुन्दर चेष्टा करने वाले और कष्ट को सहन कर सकने वाले शिष्य का वैद्य उपनयन करे।

शल्य चिकित्सा : शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में यद्यपि कुषाणकाल में 20 प्रकार की छुरियों एवं सुइयों, 20 fशलाकाओं के प्रमाण, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं।[3]परन्तु इसके विकास का श्रेय सुश्रुत को दिया जाता है। इसमें

रोगों के निदान, शरीर रचना विज्ञान, भ्रूण विज्ञान, विष विज्ञान तथा रोगोपचार जैसे विषयों का विवेचन है।[4] इसमें मोतिया बिन्द, पथरी तथा अनेक रोगों में शल्योपचार बताया गया है। इस ग्रन्थ में शल्य क्रिया के 121 उपकरणों का उल्लेख है।

आयुर्वेदाचार्यों ने सदैव पुरुष के शारीरिक संगठन अर्थात् उसकी काया को महत्व दिया और उनकी रूचि उसी को समझने तक सीमित रही। चरक संहिता में शरीर ही पुरूष का मूल और शरीर मूल वाला ही पुरूष के रूपमें व्याख्यायित है।[5] सुश्रुत संहिता में इसी दृष्टिकोण को आगे बढ़ाते हुए स्पष्टतः कहा गया है कि पुरूष शब्द से पुरूषोत्पत्तिकारक पंच महाभौतिक शुक्रशोणितादि अंग-प्रत्यंग विभाग तथा त्वचा, मांस, अस्थि, शिरा, स्नायु आदि धातु समझे जाते हैं।[6] इस प्रकार स्पष्ट है कि उपनिषदकारों के विपरीत सुश्रुत का पुरूष के प्रति दृष्टिकोण भौतिकवादी है।

- इसी भौतिक वादी दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति अन्यत्र मिलती है । जहाँ कहा गया है कि पुरूष मनुष्य को शरीर रस से ही उत्पन्न समझो। अतः बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह अस्वस्थ्य कर आहार, पान और आचार से प्रयत्न करके रज की रक्षा करे।[7] स्वयंरस भी पंचभूतों से उत्पन्न होता है। सुश्रुत संहिता में कहा गया है कि पंचभूतात्मक यथाविधि भोजन किये गये आहार का योग्य परिपाक होने से जो प्रसाद स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म सार बनता है, वह रस कहलाता है।[8]

❖ **चरक संहिता :** चरक संहिता में शरीर को आहार से उत्पन्न बताया गया है अर्थात् शरीर का अस्तित्व आहार के ही कारण है।[9] इस प्रकार स्पष्ट है कि चरक की भांति सुश्रुत ने भी स्वस्थ्य रहने के लिए संतुलित आहार-विहार पर बल दिया। शल्य चिकित्सक के लिए मानव शरीर संरचना का ज्ञान होना परमावश्यक है। इसके अभाव में शल्य चिकित्सा की गति अवरूद्ध हो जाती है।

मानव शरीर संरचना के ज्ञान का उल्लेख उत्तरवैदिक वाङ्मय में भी प्राप्त होता है। **'वाजसनेयी संहिता'** में शरीर धातुओं के अनुप्रस्थच्छेदन क्रम का विवरण प्राप्त होता है। यह विवरण अभिकेन्द्रीय है। यहाँ ऐसे धातुओं के उपविभेद भी निर्दिष्ट है। त्वचा से अस्थि मज्जा तक के धातुओं के उपविभेदों का भी उल्लेख मिलता है। त्वचा से अस्थिमज्जा तक के धातुओं का उच्चारण करते हुए रोम, व्यष्टिरोम, त्वचा, व्यष्टित्वचा, लोहित, व्यष्टिलोहित, भेद, व्यष्टिभेद, मांस, व्यष्टिमांस, स्नायु, व्यष्टिस्नायु, अस्थि, व्यष्टिअस्थि, मज्जा, व्यष्टिमज्जा का उल्लेख क्रमबद्ध ढंग से मिलने में इनके यथास्थिति का ज्ञान होता है। इसके अतिरिक्त हृदय के अग्रस्थ भाग के तराशने का भी उल्लेख हुआ है।[11] अथर्ववेद में अस्थियों एवं संधियों का विस्तृत विवरण है। इसके अतिरिक्त, अन्यत्र[13] भी शरीर अंग संरचना के उल्लेख प्राप्त होते हैं। सुश्रुत ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया तथा शल्य चिकित्सा को व्यावाहारिक स्वरूप प्रदानकिया।

एक अनुभवी शल्य चिकित्सक के लिए शरीर रचना का ज्ञान आवश्यक होता है। सैद्धान्तिक ज्ञान व्यावहारिक ज्ञान के अभाव में अधूरा रहता है। अतः व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए शवोच्छेदन आवश्यक है। प्राचीन आयुर्विज्ञान विशेषज्ञ शव को संरक्षित रखने की विधा से पूर्णतः परिचित थे। इसका संकेत हमें वाल्मीकि रामायण में मिलता है जिसमें दशरथ के शव को भरत के आने तक तेल से भरे पात्र में सुरक्षित रखने का उल्लेख मिलता है। अथर्ववेद मेंभी शवच्छेदन की क्रिया से भली भांति परिचित होने का संकेत मिलता है। सुश्रुत संहिता भी आयुर्वेदाचार्यों को मानव शरीर संरचना की समग्र एंव यथार्थ ज्ञान रखने पर बल देती है। इसके लिए शवच्छेदन को ही सुश्रुत संहिता सर्वाधिक उपयुक्त समझती है। उसका निर्देश है किशरीर के त्वक्पर्यन्त जो यह अंगविनिश्चय है, वह शरीर रचना ज्ञान, शल्य ज्ञान केबिना अवर्णनीय है। अतः शल्य काहरण करने वालों को मृत शरीर का शोधन करके अच्छी प्रकार अंगों का विनिश्चय (विच्छेदन) करना चाहिए। प्रत्यक्ष से देखा हुआ एवं शास्त्र से जाना हुआ, ये दोनों ही प्रकार ज्ञान की वृद्धि के कारण होते हैं।

शवच्छेदन करने की प्रक्रिया पर प्रकाश डालते हुए सुश्रुत संहिता उल्लेख करती है सम्पूर्ण अंगो वाले, विष से न मरे हुए, लम्बी बीमारी से न मरे हुए, एक-सौ वर्ष की आयु से कम के शव में से आंत और मल को निकालकर पुरुष के शव को बहते जल वाली नदी में पिंजरे के अन्दर मुंज, वल्कल, कुश, सन आदि किसी एक से लपेटकर एकान्त स्थान में रखकर सड़ाये। भली भांति नरम बन जाने पर इसको निकाल कर इस शरीर को सात दिनों तक खश, बाल, बॉस, बल्वज की बनाई किसी एककूंची से धीरे-धीरे रगड़ते हुए त्वचा से लेकर सभी वाह्य एवं आन्तरिक अंग-प्रत्यंग भागों की उनकी विशेषताओं को कथनानुसार आंखों से देखे।

निश्चय ही शरीर रचना विषयक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्राप्त शव शल्य चिकित्सा के प्रशिक्षुओं के लिए अमूल्य निधि बन जाता रहा होगा। अभ्यास के लिए निरन्तर शवों की उपलब्धता दुष्कर था। अनभ्यास के कारण शव के अंगों के विदीर्ण होने की आशंका रहती होगी। अतः शवच्छेदन के पूर्व सावधानियां बरती जाती थी। सर्वप्रथम कुछ फलों एवं पुतलों के माध्यम से शवच्छेदन सम्बन्धी प्रारम्भिक तकनीकी प्रशिक्षण दिया जाता था। सम्भवतः ऐसे ही प्रशिक्षुओं के लिए सुश्रुत संहिता के **'योगसूत्री अध्याय'** में कहा गया है।

सम्पूर्ण शास्त्र में पढ़े हुए शिष्यको भी योग्या (कर्माभ्यास) करवाना चाहिए। स्नेहन, नमन, विरेचन आदि तथा छेद्य, मेद्य, वेध्य आदि कार्यों में कर्म करने की विधि बतानी चाहिए क्योंकि बहुत अच्छी तरह शास्त्र पढ़ लेनेपर भी कर्माभ्यास किये बिनावह शास्त्रज्ञाता शिष्य इनकार्यों मेंअयोग्य होताहै। पुष्पफल (कुष्माण्ड), अलाबू (घिया,कद्दू), कालिंदक (तरबूजा), त्रपुरा (खीरा), एवरूक (ककड़ी), कर्कारूक (एक प्रकार की ककड़ी) आदि वस्तुओं में छेदन के सभी भेदों को दिखाना चाहिए | उत्कर्तन, अपकर्तन, ये भी कार्य इन्ही पर दिखाएँ।

इस प्रकार के मिथ्या पूर्वाभ्यास के महत्व को स्वीकार करते हुए भी सुश्रुत संहिता इस

बात पर भी बल देती है कि प्रशिक्षु यथार्थ शवच्छेदन भी करे जिससे उसे शरीर के अंग-प्रत्यंगों का अपनी ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से प्रत्येक्षण हो सके, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रेक्षण ही इस प्रकार के ज्ञान को सुनिश्चित करने में सहायक सिद्ध होता है। वस्तुतः प्रत्यक्ष प्रेक्षण ही ज्ञान को सुनिश्चित करने में सहायक होता है। आयुर्वेद की शिक्षा देने वाले आचार्य में अन्य गुणों के साथ ही उसका हाथ भी यशस्वी होना चाहिए। सुश्रुत संहिता में शल्य क्रिया के लिए हाथों की दक्षता को विशेष महत्व दिया गया है। इसमें कहा गया है कि यंत्र - कर्म हाथ के अधीन होते हैं। यंत्र तो एक-सौ एक (असंख्य) होते हैं परन्तु इनमें सबसे प्रधान हाथको ही समझे क्योंकि यंत्र - कर्म हाथ के अधीन होने के कारण हाथ के बिना यंत्रों का प्रयोग असम्भव है।

निश्चय ही सुश्रुत जैसे आयुर्वेदाचार्यों का शल्य चिकित्सा के क्षेत्र में इस सीमा तक आगे बढ़ जाना अत्यन्त क्रान्तिकारी कदम था क्योंकि धर्मशास्त्रकारों का शल्य चिकित्सा के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त हतोत्साहित करने वाला था। लगभग 500 ई०पू० से 300 ई०पू० के मध्य लिखे गये आप स्तम्ब धर्मसूत्र, गौतम धर्म सूत्र एवं वशिष्ठ-धर्मसूत्र जैसे धर्मसूत्र ग्रन्थों में शल्य-चिकित्सकों के हाथ का अन्न ग्रहण करना निषिद्ध घोषित किया गया है। इसके पश्चात् मनुस्मृति (लगभग 200 ई०पू०) में भी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाया गया है। मन ने चिकित्सा कर्म के प्रति तिरस्कार व्यक्त करते हुए यहाँ तक कहा कि चिकित्सक से प्राप्त अन्न मवाद की भांति दूषित होता है। चिकित्सा कर्मियों की उपस्थिति मात्र से देवता और पितर अप्रसन्न हो जाते हैं और यज्ञ कर्म निष्फल हो जाता है। विष्णु स्मृति एवं महाभारत का चिकित्सकों के प्रति दृष्टिकोण भी लगभग इसी प्रकार का है। महाभारत में चिकित्सकों के लिए श्राद्ध के अवसर पर दान भी वर्जित घोषित किया गया है तथा यह कहा गया है कि चिकित्सकों को श्राद्ध के अवसर पर दिया गया दान मवाद एवं रक्त की भाँति दूषित होता है। स्पष्टतः विधि निर्माताओं के द्वारा निदिन्त होने के कारण चिकित्सा कर्म एवं शल्यचिकित्सा द्विजातियों के द्वारा उपेक्षित हुए।

- **मनुस्मृति :** मनुस्मृति में चिकित्सा कर्म को अम्बष्टो का कार्य बताया गया है । मनु ने अम्बष्टों को ब्राह्मण पिता एवं वैश्या माता की संतान कहा है। वस्तुतः इस प्रकार की उक्तियों का उद्देश्य चिकित्सकों को हीन जातियों से उत्पन्न बताकर उनके कार्य को भी हीन कोटि का सिद्ध करना था । वस्तुतः चिकित्सीय कर्म के प्रति धर्मशास्त्रकारों की इस प्रकार की धारणा का एक प्रमुख कारण यह प्रतीत होता है कि चिकित्सीय कर्म में प्रशिक्षण की प्रक्रिया में प्रशिक्षार्थी को मल-मूत्र, रक्त, मज्जा आदि का स्पर्श करना पड़ता था। इनके स्पर्श मात्र से ही द्विजातियों के अशौच की भावना की कल्पना करली गई थी।
    - दूसरे चिकित्सा कर्म के प्रशिक्षुको वनों में घूम-घूम कर वनस्पतियों का चयन करना पड़ता था जिसमें उन्हें औषधियों को चखना पड़ता था, उनका स्पर्श करना पड़ता था। फलतः उसमें श्रम एवं जोखिम अधिक था क्योंकि सभी

वनस्पतियाँ न तो स्पर्श के योग्य होती हैं और न ही भक्षण के योग्य। फलतः भैषज्य कर्म को दूषित कर्म माना गया।

- इस दृष्टि से सुश्रुत का कदम निश्चय ही क्रान्तिकारी था। उन्होंने चिकित्सा एवं चिकित्सीय वृत्ति के प्रति रूढ़िवादी विचारधारा के विपरीत इन्द्रियानुभवाश्रित आधार सामग्री पर नयी दृष्टि अपनाया। रूढ़िवादी विचारधारा के अनुसार मृत देह को अपवित्र माना जाता था और सामान्यतः उसका स्पर्श भी वर्जित था। यदि किसी कारण से शव का स्पर्श भी करना पड़े तो शुचि स्नान अथवा अन्य शुचि संस्कार करना पड़ता था।
- इसके विपरीत सुश्रुत ने चिकित्सीय-वृत्ति एवं शल्यचिकित्सा को मात्र शूद्रों की संकीर्ण परिधि से बाहर लाकर द्विजातियों (ब्राहमण, क्षत्रिय एवं वैश्य) के चिकित्सा शास्त्र में जिज्ञासु बालकों के लिए भी व्यावसायिक मार्ग प्रशस्त किया। निश्चय ही इससे चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में पर्याप्त प्रगति हुई एवं गुप्तोत्तर युग में अनेक चिकित्सीय ग्रन्थों की रचना हुई।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. सुश्रुत: सूत्रस्थानम् 5.5
2. सुश्रुत संहिता: विशिखानु प्रवेशनीय अध्याय।
3. सुश्रुत संहिता: शिष्योप नयनीय अध्याय।
4. ओझा गौरी शंकर हीराचन्द: मध्यकालीन भारतीय संस्कृति का निर्माण पृ0 102
5. दि एज आफ इम्पीरियल यूनिटी, पृ0 277
6. शरीर हास्य मूलं शरीर मूलं पुरुषों भवति।
7. चरक संहिता 1.1.6.6.
8. तत्र पुरुष ग्रहणात् तत् - सम्भव - द्रव्य- समूहः भूतादि उक्तः, तत् अंग-प्रत्यंग विकल्प, चत्वक मांस अस्थि शिरा स्नायु प्रभृत्तयः।
9. सुश्रुत संहिता 1.1.47.
10. काशी संस्कृत सीरीज संस्करण।
11. रजसम् पुरुष विद्यात् रसम् रक्षेत्प्रयत्नतः। -उपर्युक्त1.14.12

Disclaimer/Publisher's Note:
The statements, opinions and data contained in all publications are solely those of the individual author(s) and contributor(s) and not of JNGBU and/or the editor(s). JNGBU and/or the editor(s) disclaim responsibility for any injury to people or property resulting from any ideas, methods, instructions or products referred to in the content.